डॉ० शान्ति सुमन से बातचीत के अंश

'गीत ही जन-भावना को सुरक्षित रख सकता है'

❑ मार्कण्डेय प्रवासी

हिन्दी गीतों की महामल्लिका डॉ० शान्ति सुमन पिछले साढ़े तीन दशकों से अपनी गीतात्मकता, लयात्मकता तथा गीत–विषयक प्रतिबद्धता के लिए हिमालय से कन्याकुमारी तक चर्चित रही हैं। आप मुजफ्फरपुर स्थित महंत दर्शन दास महिला महाविद्यालय में हिन्दी की यशस्विनी यूनिवर्सिटी प्रोफेसर हैं। इनके कई गीत–संग्रह प्रकाशित हैं। देश के दो दर्जन से अधिक आकाशवाणी केन्द्रों और कम से कम सात दूरदर्शन केन्द्रों द्वारा इन्हें आदर के साथ अखिल भारतीय हिन्दी कवि–सम्मेलनों में काव्य पाठ हेतु आमंत्रित किया जाता रहा है। गत दिनों इन्होंने संध्या प्रहरी के सम्पादकीय कार्यालय में पधारने की सदाशयता दिखाई। यहाँ प्रस्तुत हैं गीतों को केन्द्र मानकर इनके साथ सम्पन्न कुछ प्रश्नोत्तर।

शान्ति सुमन जी! आप सम्पूर्ण हिन्दी भारत में गीतों की महामल्लिका मानी जाती हैं और सम्पूर्ण देश में अखिल भारतीय कवि–सम्मेलनों में अपने नवगीतों और जनवादी गीतों के माध्यम से सुधी श्रोताओं का स्नेह पाती रहती हैं। कृपया यह बतायें कि आपने काव्य–साधना के लिए मूलतः गीत–विधा को ही क्यों चुना ?

मेरे लिए यह प्रश्न बहुत आकर्षक हो उठता है जब मार्कण्डेय प्रवासी जैसे श्रेष्ठ गीतकार मुझसे यह पूछते हैं कि मैंने गीत विधा को ही मूल रूप में क्यों चुना। आप तो जानते ही हैं कि गीत विधा सनातन है। चिर विकसित होकर भी इसमें विकास की संभावनाएँ पूरी तरह अक्षुण्ण रूप से जुड़ी होती है। सम्पूर्ण संस्कृत और हिन्दी साहित्य का इतिहास कहता है कि गीत अर्थात् छंद का वर्चस्व रहा है। गीतात्मकता वेद–मंत्रों में सुरक्षित रही है। हिन्दी में विद्यापति से लेकर अत्याधुनिक काल में भी गीत विधा ही सर्वाधिक मुखर विधा रही है। बीसवीं, सदी के निरंतर पथराते वातावरण में तो गीत ही हमारे अस्तित्व को नयी गति और त्वरा

दे सकते हैं। वर्तमान हिंसक परिस्थितियों में गीत हमारी आत्मिक आवश्यकता है। वह हमारी मनुष्यता, जनवादिता को सुरक्षित रख सकता है। गीतों के अवयवों में विन्यस्त माधुर्य, संवेदनशीलता और गंभीरता तथा आत्मीय संस्पर्श ऐसी बातें हैं जिनसे प्रभावित और संचरित होकर मैंने गीत को ही लेखन का मूल माध्यम बनाया।

हिन्दी में छायावाद का अन्त होते–होते जब प्रगतिशील लेखक संघ के माध्यम से मार्क्सवाद ने पैर जमाना प्रारंभ किया तो सबसे पहला आक्रमण गीतों पर हुआ। गीत को सामंती युग की विधा बताया गया और इसे तिरस्कृत रखने का प्रयास हुआ। आपकी दृष्टि में वह कौन–सा कारण है कि नयी कविता या प्रयोगवाद के दौर की कविता गीत को मार नहीं सका ?

छायावाद काल गीतों का उत्कर्षकाल रहा है। छायावाद के उत्तरार्द्ध में गीतों की काल्पनिक सघनता और वाचनीयता ने अवश्य ही उसकी सामाजिक प्रासंगिकता को थोड़ा व्यवधान दिया। ऐसे में भी महाकवि निराला के गीत अपवाद के रूप में लिये जा सकते हैं। उनके द्वारा रचित 'वह तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक' आदि कवितायें तथा 'आज मन पावन हुआ है', 'बाँधों न नाव', 'काले–काले बादल आये' आदि गीत इसके प्रमाण हैं। प्रगतिवाद के समीक्षकों ने अवश्य गीतों पर आक्रमण किया और अपनी वामपंथी रुझान परोसने की खातिर उन्होंने कविता का इस्तेमाल औजार के रूप में किया, पर यह आश्चर्य की ही बात है कि प्रगतिवाद के अधिकांश कवि गीतकार भी थे। जनवादी गीतों को धारदार बनाने का काम इन गीतकारों ने ही किया। हँसिया और हथौड़े की लड़ाई में छन्द ने अपनी सार्थक भूमिका निभायी। किसान और मजदूरों के मन में अपेक्षित प्रभाव डालने के लिए ये गीत जितने सक्षम हुए, उतनी कवितायें नहीं।

प्रयोगवाद और नयी कविता के युग में भी स्वयं अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, केदार नाथ सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती आदि अति प्रतिष्ठित गीतकार हैं। उनके गीतों ने उन्हें जितनी ख्याति दी, जितना उन्हें माँजा, उनकी कविताओं ने नहीं। फिर भी स्वयं अज्ञेय ने एक गीत–संग्रह में गीतों पर विपरीत वक्तव्य देकर उनपर निर्णय और अप्रासंगिक प्रहार किया, पर गीत की जड़ें इस देश की मिट्टी और इस देश की जनता के जीवन में बहुत गहरे गड़ी हैं।

गीत कभी भी जन–जीवन से विच्छिन्न नहीं हुआ और शिल्प के रूप में भी उसके आकृष्ट करने वाले सारे गुण और सारी विशेषताएँ जन–मानस को लुभाती रही हैं।

स्वाधीनता–संग्राम से लेकर आज तक जनता के सुख–दुख, संघर्ष और जीवन की सारी लड़ाइयों में गीत ही औजार बनते रहे हैं। इसलिए जिस चीज को जनता की स्वीकृति प्राप्त हो जाती है, उसको कोई वाद तो क्या कोई सत्ता भी ध्वस्त नहीं कर सकती, अतएव गीत आज भी लेखन के मूल में अवस्थित है।

गीत सृष्टि के आदिकाल से ही मानव–कंठ में रसते–बसते रहे हैं। आप आनेवाले अति वैज्ञानिक युग में किंवा ऐसा कहें कि इक्कीसवीं सदी में गीतों के भविष्य के बारे में कैसा ख्याल रखती हैं ?

गीतों के भविष्य के बारे में अत्यंत श्रेष्ठ और शालीन ख्याल रखती हूँ। मैं यह मानती हूँ कि आज हमारा सामाजिक जीवन जिस तरह तरह–तरह की कुंठाओं, असुरक्षा, भय, तनावों और हिंसक प्रवृत्तियों से ग्रस्त हो उठा है, गीत ही वैकल्पिक रूप से समाज को इन प्रवृत्तियों से मुक्त कर सकता है। भय से भरी हुई आँखों में नवगीत की लय बुनेगी और हिंसक मानसिकता में जब गीत की मिठास भरेगी तभी उस लालित्य, सामंजस्य और आत्मीय सम्पृक्ति के भाव जगेंगे जिनसे हमारे सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन की बेचैनी कम हो सकती है। इसलिए सही अर्थ में तो आज भी गीत अपने पूरे परिप्रेक्ष्य में अपनी संभावनाओं के क्षितिज खोले खड़ा है। जीवन जिस तरह आज विकास के सोपानों पर खड़ा है, गीत उसकी सम्पूर्ण क्षमताओं का दावेदार है।

संध्या प्रहरी के पाठकों के लिए कृपया यह बतायें कि गीतों की रचना के लिए आप शब्दों के चयन, अभिव्यक्ति की भंगिमा और लय–गति–मति की कैसी संयोजना पसन्द करती हैं ?

मैं गीतों की रचना के लिए ऐसा कोई शब्द चयन, ऐसी कोई अभिव्यक्ति की भंगिमा और लय गति–मति की संयोजना पसन्द नहीं करती जो आज के सामाजिक–राजनैतिक जन जीवन की अभिव्यक्ति के लिए ऊपर से आरोपित लगती हो। मेरे गीत अंतर्वस्तु के लिए अपेक्षित शिल्प का चुनाव कर लेते हैं। वे कहीं से सायास नहीं, बहुत सहज और

समाज तथा जन–जीवन से ही उठे हुए होते हैं। उदाहरण दे दूँ तो और भी स्पष्ट हो जाएगा –

अपना तो घर गिरा, दरोगा के घर नये उठे/हाथ और मुँह के रिश्ते में ऐसे रहे जुटे/सिर से पाँवों की दूरी अब दिन–दिन होती छोटी/कहती गोरी भौजी मेरे गाँव की!

अथवा

अभी समय को खेतों में
पौधों–सा रोप रहा
आँखों में उठने वाले गुस्से को
सोच रहा
रक्तहीन हुआ जाता कैसे गोदी का पालना!
बेटा मेरा रोये, मांगे एक पूरा चन्द्रमा!!

आपने अपने अधिकतर गीतों की रचना संध्या में की है या सुबह में या किसी अन्य समय में ? आप अपनी रचना–प्रक्रिया पर कुछ बताना चाहेंगी ?

यह बताना कठिन है कि मेरे अधिकतर गीत किस समय लिखे गये हैं। गीत किसी रुटीन वर्क की तरह तो लिखा नहीं जा सकता। इसलिये समय का कोई खास पहर मेरे लिए महत्वपूर्ण नहीं रहा। मुझको यह कहने में सुविधा होगी कि जब मेरा मन संघर्षों से जूझता रहा है और आस–पास की परिस्थितियाँ भी मुझको कसने का ही काम करती रही हैं तब अनायास गीतों ने ही मेरे द्वन्द्वों और तनावों से मुझको मुक्त किया है। गीत मेरे लिए कभी मनोरंजन का माध्यम नहीं रहा। कोटि–कोटि संघर्षरत श्रमजीवी जनता की तरह वह मेरे जीवन–संघर्ष में भी औजार की तरह रहा है। इसलिए जब भी मन थका होगा, गीतों ने ताजगी दी होगी – फिर वह सुबह है या शाम – क्या अंतर होता है।

आपके कितने गीत–संग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके हैं ?

अभी तक दस गीत–संग्रह प्रकाशित हैं –

1. ओ प्रतीक्षित (नवगीत संग्रह) 2. परछाईं टूटती (नवगीत संग्रह) 3. सुलगते पसीने (जन गीतों का सहयोगी संकलन) 4. पसीने के रिश्ते (जनगीतों का सहयोगी संग्रह), 5. मौसम हुआ कबीर (जनवादी गीत–संग्रह), 6. मेघ इन्द्रनील (मैथिली गीत–संग्रह), 7. भीतर–भीतर

आग, 8. पंख–पंख आसमान, 9. एक सूर्य रोटी पर, 10. धूप रँगे दिन।

आपकी दृष्टि में अभी देश–प्रदेश में कौन–कौन से गीतकार गीत लेखन में सक्रिय लगते हैं ?

वर्तमान सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों में लगातार खंडित होती हुई संवेदनाओं को गीत ही जीवित रख सकता है यह आभास आज के समस्त विचारकों को हो रहा है और इस अपेक्षा को देश–प्रदेश में जो गीतकार जीवित रख रहे हैं उनमें राजेन्द्र प्रसाद सिंह, माहेश्वर तिवारी, नचिकेता, रामकुमार कृषक, मार्कण्डेय प्रवासी, बुद्धिनाथ मिश्र, गोपी वल्लभ सहाय, सत्य नारायण, निर्मल शुक्ल, मधुसूदन साहा, अनूप अशेष, महेन्द्र नेह, देवेन्द्र आर्य, अंजनी कुमार विशाल, सुरेश श्रीवास्तव, श्रीकृष्ण तिवारी, यश मालवीय, कैलाश गौतम आदि के नाम अधिक महत्वपूर्ण हैं। आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री तो इस समय भी गीत रचना में रत हैं ही। उनकी सक्रियता और भी विलक्षण है।

यह संयोग और सौभाग्य की बात है कि पटना तथा दिल्ली से प्रकाशित 'संध्या प्रहरी' सांध्य दैनिक के सम्पादक श्री अंजनी कुमार विशाल स्वयं हिन्दी के सुकवि और सुकंठ गीतकार हैं। आपको जेवीजी संध्या प्रहरी कार्यालय में आकर कैसा लगा ? क्या आप इस समाचार–पत्र के सम्पादन–प्रकाशन में भी किसी प्रकार के गीतात्मक स्पर्श का अनुभव करती हैं ?

मुझको संध्या प्रहरी कार्यालय में आकर जिस आत्मीयता का अनुभव हुआ, उसके लिए मैं इसके सम्पादक श्री विशाल की साहित्यिक सुरुचि, गीतिल संवेदना और सामाजिक सौजन्य के लिए स्नेह मानती हूँ। मैं इस समाचार–पत्र के सम्पादन के विन्यास और अन्तर्वस्तु की सघनता में जीवन को इतना उपस्थित पाती हूँ कि लगता है गीत इसके भीतर ही कहीं रचा बसा होगा। इस कुशल सम्पादन, प्रकाशन के लिए श्री अंजनी कुमार विशाल की जागरूकता की प्रशंसा ही की जा सकती है।

('संध्या प्रहरी', 26 अप्रैल 1994 में प्रकाशित)

■